Journal of Social Issues and Development (JSID)
(Himalayan Ecological Research Institute for Training and Grassroots Enhancement (HERITAGE)
ISSN: 2583-6994 (Vol. 3, Issue 1, January-April, 2025. pp. 264-272)

उत्तराखण्ड में प्रव्रजन के एक कारण के रूप में भू प्रबन्ध की औपनिवेशिक व्यवस्था का अध्ययन

प्रशान्त

उत्तराखण्ड में राज्य की समस्त भूमि पर राजा का स्वामित्व माना गया। कृषकों का भूमि पर मालिकाना हक नहीं था। काश्तकारों द्वारा भूमि को प्रयोग में लाने की अवधि राजा की दया पर निर्भर करती थी। बेचने व भूमि उपयोग में परिवर्तन के अतिरिक्त कृषि भूमि के उपयोग के अधिकार यथा (विक्रय, हस्ताक्षरण व भूमि उपयोग परिवर्तन के अतिरिक्त) राजा के प्रसाद पर्यन्त वंशानुगत थे। अन्य समस्त भूमि जैसे वन, चारागाह, जल संसाधनों का उपयोग सामुदायिक संसाधनो की तरह होता था।[1]

अंग्रेजों ने पूर्व की इस स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन करके काश्तकार को ही भूमि का वास्तविक स्वामित्व प्रदान किया। ब्रिटिश शासको ने इस हिमालयी क्षेत्र में भूस्वाभित्व और भू–उपयोग की स्पष्ट नीति अपनाते हुए समस्त कृषि भूमि को व्यक्तिगत स्वामित्व में हस्तान्तरित किया, वास्तव में सामुदायिक स्वामित्व भूमि के निजी इच्छा के अनुसार बदलने में मुख्य रोडा था, जहॉ भारत में सामुदायिक भूस्वामित्व के साथ कृषि की सामुदायिक पद्वतियों का प्रचलन आम था, वही निजी स्वामित्व तथा निजी उद्यम की पूजीवादी परम्परा में प्रेषित ब्रिटिश प्रशासकों के लिए एक नवीन तथ्य था, उन्हें भूमि पर व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार न होना, सामाजिक अव्यवस्था लगता था।[2]

उत्तराखण्ड में 99 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गांवों में बसी थी। गांव में बसे लोगों की आजीविका का मुख्य साधन कृषि एवं पशुपालन था। पशुपालन, कृषि का ही आवश्यक अंग था। सरकार को राजस्व मूलतः इन्हीं स्रोतों से प्राप्त होता था। कम्पनी सरकार भविष्य में

उपसचिव, उत्तराखंड लोग सेवा आयोग

राजस्व बढ़ाने के लिए उत्सुक थी, परन्तु स्थायी भू–व्यवस्था से कम्पनी का क्षेत्र से भविष्य में बढ़ने वाले राजस्व का मार्ग बन्द हो गया है। यही कारण था कि डायरेक्टर्स ने गवर्नर जनरल को आदेश दिया था कि भविष्य में भू–व्यवस्था पांच वर्ष से अधिक की अवधि के लिए न की जाय। नव विजित हिमालय क्षेत्र में भू–व्यवस्था करना कठिन कार्य था क्योंकि सरकार को यहां की भौगोलिक परिस्थितियों की ठीक–ठीक जानकारी नहीं थी, इसलिए प्रारम्भिक भू–व्यवस्था में गोरखा काल से चली आ रही भू–व्यवस्था को ही आधार मानकर भू–राजस्व का निर्धारण किया गया था।

इस प्रकार ब्रिटिश शासन की आरम्भिक भू–प्रबन्ध नीति में गोरखा शासन की भू–प्रबन्ध नीति के प्रतिमानों को ही आधार मानकर भू–राजस्व की उगाही की गई। भविष्य के नीति के दृष्टिगत तत्कालीन सरकार के सचिव द्वारा 27 मई 1815 को कमिश्नर कुमांयू को लिखे पत्र के अनुसार सरकार पूरी जांच पड़ताल कर कुमांयूं के समस्त संसाधनों की जानकारी प्राप्त करेगी। जिसमें कतिपय स्थानीय भिन्नताओं का ध्यान रखना भी आवश्यक होगा उक्त सर्वे के बाद ही भू–प्रबन्ध की प्रवृति और भू–राजस्व की उगाही से सम्बन्धित किसी नीति के निर्धारण में सक्षम हो पाएगी।[3]

हिमालय क्षेत्र में वर्ष 1803 से 1815 तक लगभग 13 वर्षो नेपाल का शासन था। इस शासन को लौह–दंड का नाम दिया गया जिससे स्पष्ट था कि शासन की प्रवृत्ति निर्मम कठोरता की थी। नेपाली शासन अवधि में जनता को दास के रूप में क्रय–विक्रय किया गया जिससे अनेक लोग अपने धर द्वार छोडकर पलायन कर गये थे। सन् 1815 में ब्रिटिश शासन की सहायता से गोरखाओं का शासन समाप्त हो गया तथा हिमालयी क्षेत्र ब्रिटिश शासन एवं टिहरी राजा के अधीन आ गया। ब्रिटिश नागरिको ने यहॉ की आवोहवा को अपने अनुकूल पाया तथा एक स्थिर शासन प्रारम्भ किया, इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत सन् 1816 में कुमायूं डिवीजन के गढ़वाल परगना में असिस्टेन्ट कमिश्नर ट्रेल ने तथा कुमायूं में गार्डनर ने भू–प्रबन्ध किया। जार्ज विलियम ट्रेल ने अपने पच्चीस वर्षो के कार्यकाल में पहले एक–एक वर्ष के लिए सन् 1915,1816,1817 एवं फिर तीन–तीन वर्षो के लिए सन् 1820,1823 एवं उसके पश्चात् 05 वर्षो के लिए सन् 1823,1828,1833 एवं अन्तिम बार सन् 1838 में कुल आठ बार भू व्यवस्थायें की। सन् 1838 की भूव्यवस्था को विक्रयी संवत् 1800 में किये जाने के कारण अस्सी साला बंदोबस्त भी कहा जाता है, इस बंदोबस्त में ग्रामो, पट्टियों और परगनों की सीमायें निर्धारित की गयी।[4] ब्रिटिश शासको की उक्त नीति से यह तो स्पष्ट है कि भौगोलिक रूप से दुरूह इस क्षेत्र में भू बदोबस्त की व्यवस्था औपनिवेशिक व्यवस्था को आर्थिक आधार देना ही था। उनके अधिकांश निर्णयो में पर्वतीय परिप्रेक्ष्य (mountain perspective) की भी झलक होती थी लेकिन उनकी अर्थव्यवस्था और प्रशासन की नीतियां मौलिक रूप से उत्पादन प्रक्रिया में सृजित अधिशेष का अधिग्रहण (to usrup the surplus generated in production process) करने

की थी, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये ब्रिटिश प्रशासकों द्वारा जनजीवन की परम्पराओं और दीर्घकालीन प्रतिभावों की गम्भीर तौर पर अपेक्षा की जाती थी। भू प्रबन्ध के अन्तर्गत भू प्रबन्ध की नीति थी, भू प्रबन्ध की नीति शासक के अनुरूप भू प्रयोग शासन के आधार देने हेतु अधिकतम राजस्व की प्राप्ति उद्देश्य थे। ब्रिटिश नीति ने दुर्गम धार्मिक स्थल को बदल दिया। गोरखा शासनकाल में भू–राजस्व सामग्री के रूप में भी चुकाया जाता था,परन्तु ट्रेल ने इस प्रथा को बन्द करके केवल नकद के रूप में ही राजस्व चुकाने हेतु आज्ञा जारी की थी। सामग्री के विक्रय की कठिनाई को ध्यान में रखते हुऐ निर्धारित आधे राजस्व के केवल एक तिहाई जमा करने को कहा गया यह न केवल व्यवस्था परिवर्तन था अपितु जनमानस की कई पीढियों की परम्पराओं से अवमुक्त होना था, इससे सरकार को राजस्व में तो कमी आयी, परन्तु एक नियत धनराशी प्राप्त होने की गांरटी थी। आमजन के लिए नकद धनराशी एकत्र करना एक दुरूह कार्य था, गाँवों के आस–पास कोई मण्डी या बाजार नही था, जो नकदी उपलब्ध करा सकता था। शासन की मॉग के अनुरूप नकदी देना आवश्यक था, इन परिस्थितियों में परिवार में पुरूष सदस्य या परिवार का एक सदस्य खेती छोडकर मजदूरी के लिए तैयार हो गया इस माहौल ने नौजवानों में पलायन की मानसिकता को पैदा कर दिया। परिवार को सहायता देने हेतु एक पुत्र घर के बाहर गया, जो शहरों में काम करके कुछ पैसे वापस भेजने लगा, जिससे जीवन चलता रहे, पर इसने पहाड की जवानी का पहाड से रिसाव शुरू कर दिया।

गोरखा शासन द्वारा प्रभावशाली लोगों को जागीरें प्रदान की गई थी, इस भूमि को मुआफी भूमि कहा जाता था। इसमें उन्ही प्रकरणो को माना गया जिसमें नेपाल दरबार से पट्टा प्रस्तुत किया गया है। इन सभी लोगों को जिन्हे पूर्ववर्ती शासकों द्वारा सामन्तों को उपहार या सेवा के बदले दी गयी (लगानयुक्त) भूमि दी उन्हे भूमि का मलिक घोषित कर दिया गया। उक्त के अतिरिक्त सीधे राजा को लगान देने वाले कृषक (राजा का खैकर) तथा जगंलो को साफ कर खेतों का विस्तार करने वालों को भी भूमि का व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार दे दिया गया। ऐसे सभी भू–स्वामी अब सरकार को भूराजस्व देगें। इसमें वही प्रकरणों को माना गया जिसमे नेपाल दरबार से पट्टा प्रस्तुत किया गया है।[5]

आरम्भिक भू–व्यवस्थओं की विधि अनिश्चित एवं त्रुटिपूर्ण थी। किसी गांव के लिए भूमिकर निर्धारित करते समय उस थोक का पधान अथवा कमीण, कमिश्नर के सम्मुख उपस्थित होता था। उसे सरकार की ओर से निशुल्क भूमि मिली होती थी उसका कुछ हक दस्तूर भी होता था। वह पिछले वर्षों में गांव द्वारा अदा की गई भू–कर की राशि की सूचना कमिश्नर को देता था। यदि कोई व्यक्ति वर्तमान पधान से अधिक राशि अदा करने को प्रस्तुत होता था तो कौल करार पट्टा उस व्यक्ति के नाम पर कर दिया जाता था। इस प्रकार की गई भू–व्यवस्था एक प्रकार से नीलामी थी जिसमें निर्णय व्यक्ति क सत्व पर आधारित न होकर उसकी देय शक्ति पर आधारित था। ये भू–व्यवस्थाएं बिना किसी जांच पड़ताल के की

गई थी। जिनकी सबसे बड़ी कमी यह थी कि इनसे विदित नहीं हो सकता था कि गांव में कितना उत्पादन सभंव है। व्यवस्था परिवर्तन का आशय जमीनी ही हकीकत में सुधार नही था, परन्तु अधिशेष का उसलने की एक नियत व्यवस्था बनाना था। ताकि शासन को एक आय निश्चित होती रहे। इन परिस्थितियो में आमजन अपनी ही भूमि से ही जुड नही पाया। खेती को आधुनिक करने के प्रयासों का विचार तो बहुत दूर की कौडी थी।

क्योंकि सबसे भूमिकर वसूल न होने पर किसी भी परिवार की भूमि की नीलामतक भूमिकर प्राप्त हो जाता था। समय पर भूमिकर जमा न करने वाले पधानों और सयाणों के लिए भी कोई छूट नहीं थी। निश्चित समय पर नियत लगान न दें पाना परिवार की कमजोरी थी। इस में वह अकेला नही था, कमोवेश सभी गांव वालों की यही स्थिति थी। इसने आर्थिक सामाजिक प्रभाव पैदा किए। नागरिक के सामने नयी चुनौतिया थी। रोटी के लिए संघर्ष के साथ साथ पैरों के नीचे की जमीन व छत हटने का भी डर सामने था। ऐसी दशा में जीवन की सुरक्षा के उपायों की खोज में अपनी जमीन को छोडने के लिए विवश था। पहाड़ में भूमि उपयोग की अनिश्चित दशाएं और विकट तथा असामान्य प्राकृतिक दशाओं के कारण एक सुनिश्चित क्रियाविधि और योजना के अन्तर्गत भू–प्रबन्ध लम्बी समयावधि के लिए करना ट्रेल के विचार में लाभदायक नहीं था, और इसीलिए लम्बी समयावधि तक के लिए भू–प्रबन्ध का विचार नहीं रखा गया। यह भी महत्वपूर्ण है कि यह भू–सर्वेक्षण की विषम परिस्थितियो का ही उपकलन था, भू की स्थिति, सिचाई, पैदावर तथा कृषि में नवाचार की सोच की तरफ शासक का कोई ध्यान नही था, शासक की इस सोच ने जमीन और उसके मालिक को केवल उपभोग की वस्तु माना अवशेष अधिग्रहण से आगे की कोई सोच ही नही थी। पहाड की विकट परिस्थितियों में कृषि उत्पादन करना ही एक कठीन कार्य था। 1833 के रेग्यूलेशन 9 के द्वारा कम्पनी सरकार के आय के स्रोतों को सूचीबद्ध किया गया था। भूमिकर के अतिरिक्त कपास, तम्बाकू, पान, गल्ला, वस्त्र निर्माण व विक्रय पर, नावों पर, दुकानदारों पर, बाजार से एकत्रित देय, घास काटने, पशु पक्षियों को पकड़ने तथा भांग–मदिरा आदि पर कर लगाकर कम्पनी की आय में वृद्धि की गई। औपनिवेशिक शासन ने हिमालयी क्षेत्र के जीवन व्यापन के हर क्षेत्र को आर्थिक के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया। औपनिवेशिक हित साधन और जनहित एक दूसरे के परस्पर विरोधी रहे है। प्राकृतिक संसाधनों के औपनिवेशिक उपभोग के कारण व्यापक परिस्थितिकीय आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक प्रभाव दृष्टिगोचर हुए इसके प्रमुख प्रभाव के अन्तर्गत भूमि व प्रकृति के आर्भिवाद से परिपूर्ण हिमालय का निवासी अन्न के लिए भी मोहताज हो गया तथा शहरों में मजदूरी के लिए बाध्य ले गया।

वेंटिंग ने माल विभाग में सुधार के उद्देश्य से तथा अस्सी साल की भू–व्यवस्था में उचित संशोधन के उद्देश्य से 1833 का रेग्यूलेशन प्रसारित किया। इस समय पृथक भू–व्यवस्था विभाग की स्थाना की गई। इस समय तक भू–कर, किसी क्षेत्र में होने वाले वास्तविक उत्पादन

के स्थान पर सम्भावित आय को आधार बनाया गया। इस समय कृषि भूमि की माप के आधार पर भू–कर की समान दरें निर्धारित करना जटिल कार्य था। सभी गांवों की भौगोलिक परिस्थितियां समान नहीं थी, धरातल की ऊंचाई जंगल, झाड़ियों से उनकी निकटता या दूरी, पर्वतीय ढाल या घाटी में गांव की स्थिति के अतिरिक्त जलवायु की विषमताओं का ध्यान रखा जाना था। पर्वतीय गांवों की विकट भौगोलिक परिस्थितियों के कारण भू–मापन सम्भव नहीं था। गांव के मानचित्र, क्षेत्रफल के लेखे आदि के अभाव में रेग्यूलेशन के प्रावधानों के अनुसार भू–व्यवस्था नहीं की जा सकती थी। अन्नतः निर्णय लिया गया कि ट्रेल की अन्तिम भू–व्यवस्था में राजस्व को विभिन्न गांवों में इस तरह से बांटना चाहिए कि आने वाले 20 वर्षों में पुनः भू–व्यवस्था न करनी पड़े बैटन की भू–व्यवस्था में प्रत्येक गांव में जाकर उसकी स्थिति देखकर राजस्व का निर्धारण किया गया था। कम्पनी की आय का प्रमुख साधन भू–राजस्व था। भूमिकर नियमित रूप से तभी प्राप्त हो सकता था जब कृषकों के सत्वों की पूरी सुरक्षा हो जाती और उन्हें विश्वास हो जाता कि उनके श्रम का फल उनसे छीना नहीं जाएगा। इस जमाने में प्रतिस्पर्धा भूमि के लिए नहीं थी अपितु भूमि को आबाद करने वाले कृषकों के लिए थी। इस नई भू–व्यवस्था में प्रत्येक गांव के लिए ऐसा स्थायी रिकार्ड तैयार किया गया जिसमें गांव के विभिन्न प्रकार के आसामियों के नाम एवं उनके सत्वों का अंकन था। इस रिकार्ड को सत्वों का अंकन पत्र कहा जा सकता था। रैय्यत के साथ सरकार के विभिन्न प्रकार के कार्यकलापों के लिए भी यह रिकार्ड अति उपयोगी संदर्भ पुस्तिका का काम दे सकती थी।[6]

प्रशासकों की मंशा यह थी कि राजस्व का निर्धारण ऐसा होना चाहिए जिसकी वसूली नियमित रूप से हाती रहे, कोई राशि बकाया न रहे। चाहे राजस्व की राशि कम हो परन्तु वह नियमित रूप से वसूल की जाने वाली हो। नई भू–व्यवस्था में जागीरदार, मुआफीदार और ताल्लुकेदारों की शक्ति तोड़कर आसामियों के सत्व बढ़ा दिए गए थे, उनकी स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाया गया था। बैटन ने 20 वर्षों के लिए जो कौल–करार पट्टा लिया था, उससे ज्ञात होता है कि किसी व्यक्ति को मालगुजार बनाने के लिए गांव के हिस्सेदारों की लिखित सहमति ली जाती थी। यह तो स्पष्ट है कि ब्रिटिश प्रशासकों ने प्रचलित व्यवस्था में आमूल चूल परिवर्तन किया लगाान के अंतर्गत आने वाले भूमि में विस्तार के साथ–साथ भूमि विक्रय व उपयोग परिवर्तन कृषि व्यवस्था में नवीन तथ्य थे। इसके साथ ही भू राजस्व का भुगतान नकद में ही चुकाने की व्यवस्था की, जो उन परिस्थितियों में एक बडा सुधार था, पर साथ ही बिना पारिश्रमिक के श्रम करवाने की परम्परा को और भी मजबूत किया भूमि स्वामित्व सम्बधी पट्टों में लगाान की राशि के साथ ही बेगार देने का भी ज़िक किया गया। यह प्रवृत्ति ''गौरों के बोझ'' के कथन को धूमिल करता है। यह सत्य है कि संसार के नैतिक नेतृत्व के नाम पर दासता, शोषण के अनगिनत नियमों के अन्तर्गत यहाँ के निवासियों को अपनी स्वावलम्बन शक्ति अपनी प्रतिष्ठा तथा आत्म सम्मान से हाथ धोना पडता है।

भूमि के कौल–करार पट्टा में सरकारी डाक को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने के लिए ग्रामीणों की बारियां लगाने का उल्लेख किया गया। इस कार्य के लिए ग्रामवासियों को कोई मजदूरी नहीं दी जाती थी। इस कार्य से ग्रामीणों को कष्ट होता था क्योंकि इससे उनके कृषि कार्य में व्यवधान होता था। बाद में इस समस्या के समाधान के लिए वैतनिक हलकारों की नियुक्ति हुई। हलकारों के वेतन के भुगतान के लिए भूमि कर पर डाकदेय लगाया गया था। डाकखाने से डाक व मुसाफिर दोनों का ढुलान किया जाता था। डाक से यात्रा करने वाले व्यक्ति मुख्यतः यूरोपियन होते थे। भूस्वामियों द्वारा सरकरी अधिकारियों को ही जाने वाली बेगार (बिना पारिश्रामिक के श्रम करवाने की परंपरा) को न केवल यथावत बनाये रखा बल्कि और मजबूत किया, बेगाार देने की बाध्यता का जिक्र भूमि स्वामित्व संबधी पट्टो में लगाान कि राशी के साथ किया जाता था, बलात श्रम की यह व्यवस्था स्वाभिमानी पहाडी लोगों के दिल मे कसक रही तथा कुछ लोग पलायन कर गये। धीरे–धीरे यह कसक प्रबल जन आदोलन में परिवर्तित हो गयी। उत्तराखण्ड में बैकेट की भू–व्यवस्था पहली ऐसी भू–व्यवस्था थी जिसमें मैदान के समान खेतों की माप की गई। अमीनों के द्वारा भू–मापन किया गया तथा खेतों के मानचित्रों और सूचियों का निर्माण किया गया। यह व्यवस्था डोरी पैमाइश के नाम से विदित है। इस भू–व्यवस्था में मेढ़ वाली सारी कृषि भूमि की माप की गई, उस पर भूमिकर निर्धारित किया गया। कटील भूमि को करमुक्त रखा गया। कृषि बंजर भूमि पर भी कोई कर नहीं लिया गया। गांव की जा सीमाएं अस्सी साला बन्दोबस्त में (1840 ई0 में) बैटन द्वारा मान्य ठहराई गई थी, अपरिवर्तित रहीं। पट्टियों और परगनों की सीमाओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। पटवारी का प्रशासकीय क्षेत्र एक निश्चित और ऐसी सीमा के अन्तर्गत आ गया जिसके अन्तर्गत दूसरी पट्टी के गांव नहीं थे।

बैकेट द्वारा की गई भू–व्यवस्था की अवधि बीत जाने के बाद पौ को गढ़वाल में भू–व्यवस्था करने की जिम्मेदारी दी गई। प्लेन टेबल द्वारा विधिवत भू–मापन करके कर निर्धारण करना उचित समझा गया। इस समय तक पहले की तुलना में खेतों का आकार प्रकार बदल चुका था। कृषि भूमि में वृद्धि हो चुकी थी। पहाड़ी क्षेत्र में खेत छोटे–छोटे थे व एक एकड़ (20 नाली) में 10, 20 व 40 तक खेत थे इस कारण गांव के मानचित्रों को 32–1 मील के मापक के आधार पर बनाया गया जिससे कि उनमें खेतों की संख्या लिखी जा सके एवं प्रत्येक पट्टी का मानचित्र 4–1 मील के मापन के आधार पर बनाया गया था। जिसको इन पट्टी में स्थित गांवों के मानचित्रों पर आधारित किया गया। भूमि रिकार्ड के निदेशक की अवधारणा थी कि कृषि भूमि के विस्तार की मात्रा को तथा भूमि से उत्पन्न अन्नों के मूल्यों में हुई भारी वृद्धि को ध्यान में रखते हुए राजस्व में वृद्धि की जानी चाहिए। मानचित्र के आधार पर प्रत्येक खेत का रकबा (बीज नाली, मुट्ठी में) निकालकर खसरा भरा गया। खसरे में खेतों से सम्बन्धित सूचनाएं अंकित की गई। पहली बार गढ़वाल में भू–मापन का कार्य हुआ। पटवारियों और अमीनों को प्लेनटेबल और जरीब से भू–मापन की दीक्षा दी गई।

पौ के लिए आदेश था कि गढ़वाल के राजस्व में 50,000 रू0 की वृद्धि करनी है और इस राशि को किसी सिद्धान्तानुसार प्रत्येक प्रकार की भूमि पर बांटना है। बैकेट ने अनुभव किया था कि गढ़वाल कुमायूं के विभिन्न भागों में भिन्न–भिन्न उर्वराशक्ति वाली मिट्टी है। निवासियों की संख्या, आर्थिक स्थिति एवं आय के साधनों में भरी असमानता है। उसने विभिन्न गांवों के लिए राजस्व की जो विध अपनायी वह मुख्यतः भू–व्यवस्थाधिकारी के विवेक पर निर्भर थी। पौ ने प्रत्येक गांव में जाकर निरीक्षण किया। उसने गढ़वाल जिले को अनेक वृत्तों में विभाजित किया। पृथक–पृथक वृत्तों की कृषि भूमि के लिए राजस्व की दरों को अपने विवेकानुसार निर्धारित किया। पौ ने उन पट्टियों के लिए जिनकी कतिपय कारणों से विधिवत नाप नहीं हो पाई थी उनकी कर राशि भी निर्धारित कर दी और उसे अपरिवर्तनीय बताया।

पौ द्वारा की गई सर्वे में कुल पांच लाख रू0 खर्च हुए। राजस्व में पचास हजार रू0 की वृद्धि हुई। अल्मोड़ा जिले की भू–व्यवस्था के लिए सरकार ने पौ के कैडस्ट्रल सर्वे के स्थान पर बैटन और बैकेट द्वारा अपनायी गई विधि का प्रयोग किया।

पौ के बाद इबेटसन को भू–व्यवस्था की जिम्मेदारी सौंपी गई। उसके द्वारा की गई भू–व्यवस्था बिना वास्तविक भू–मापन के सम्पन्न हुई थी। इस भू–व्यवस्था में नयावाद भूमि के अनुमान के आधार पर व्यवस्था की गई। पौ की भू–व्यवस्था 1896 से प्रारम्भ होकर तीस साल तक के लिए थी। नई भू–व्यवस्था को 1926 से लागू होना था 1918 में अकाल तथा 1921–22 में असहयोग आन्दोलन के कारण भू–व्यवस्था का कार्य स्थगित करना पड़ा था। भू–व्यवस्था की तैयारियां पुनः 1925 से की जाने लगी। सरकार ने निर्णय समस्या उनके 8 अगस्त, प्रमुख व्यक्तियों को बैठक में बुलाया गया कमिश्नर कुमायूं ने व्ययभार जिले को पूरा करना पड़ेगा, पांच वर्षों का जाएगा। यद्यपि सरकार के प्रस्ताव का अनुमोदन सभी व्यक्तियों ने निजी सम्पत्ति की अवधारणा ने निजी सम्पत्ति के अधिकार की विविधता के साथ–साथ कृषि भूमि के विस्तार को प्रोत्सहित भी किया। औपनिवेशिक शासकों द्वारा की गयी सन् 1815 से 1830 तक की गयी ग्यारह भू–व्यवस्था में कृषि भूमि जो सन् 1823 में लगभग 76,340 एकड थी। बढकर 1930 में 344217 एकड हो गयी। भू–राजस्व रुपये 36074 से बढकर रुपये 255161 हो गया तथा जनंसख्या लगभग 12500 से बढकर 533845 तक पहुॅच गयी उक्त से स्पष्ट है कि इस दौरान जनंसख्या वृद्वि 2.04 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही तथा कृषि भूमि का विस्तार 3.0 प्रतिशत वार्षिक रहा उक्त अवधि (1815–1930 तक) में जिला गढवाल के भू–राजस्व में लगभग 5.25 प्रतिशत वार्षिक की वृद्वि हुयी।[7]

कृषि भूमि विस्तार में नई आबाद भूमि पशुचारकों के अस्थाई आवासों को स्थायी आवासों में बदलाव आदि मुख्य कारक थे। ब्रिटिश शासको की कृषि विस्तार की नीति ने स्थानीय लोगों को प्रोत्साहित किया तथा खाद्य सुरक्षा भी प्रदान की परन्तु यथाशीघ्र खाद्यान की कमी एवं खाद्यान के लचर प्रबधंन दृष्टिगोचर होता है, इसकी पुष्टि गढवाल में सन् 1877–78, 1889, 1891, 1892, 1896 एवं 1907 के भयंकर अकालों ने की।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद की भू–राजस्व की नीति परिस्थितिक तंत्र और वन सम्पदा के विद्यटन का कारक रही। जंगलो को भू–राजस्व के विकास के मार्ग में बाधा मानते हुए वनो को साफ कर कृषि भूमि में परिवर्तित करना तथा वन्य जनजातियों को स्थायी निवास प्रदान किया गया, ताकि कृषि के व्यापक विस्तार हो तथा अधिक से अधिक लगान प्राप्त किया जाए। विजेता को विजित भूमि का उपयोग करने का पूरा नैतिक व वैधानिक अधिकार होता,इस भावना के अन्तर्गत जनता के प्राकृतिक सम्पदा पर नैसर्गिक अधिकार पर अंकुश के साथ–साथ कृषि भूमि व वन के आपसी संबधों तथा वन्य जनजतियों की जीवन के संसाधनों से पोषित होने वाली वन्य जनजातियां, भोजन संग्राहक, आखेटक और झूम खेती करने वाली जनजातियों की जीवन पद्वति और आर्थिक प्रणाली पर इतना संगठित आक्रमण भारतीय इतिहास में पहले कभी नही हुआ था। इन अकालों की पृष्टभूमि में आवागमन के साधनों का विकास न होता, अनाज के स्थानीय बाजारो का न होना कृषि की आधारभूत सरंचना के विस्तार का न होना मुख्य थे। कृषि स्थैनिकता के लिए आधारभूत सरंचना का पिछडापन व बाजार का विस्तार न होने के पीछे भी शासक ही था, परन्तु अन्न की कमी न देखते वाला यह क्षेत्र भूख से मरने के कगार पर आया तो इसके पीछे औपनिवेशिक हितों से संचालित भूमि नीति ही थी। इस नीति ने शासने के लिए संसाधनो की खोज की वरन् संसाधन के आधार में वृद्वि हेतु किसी भी नवाचार को पनपने नही दिया। कृषि के अतिरिक्त वन की भी इसी नजर से देखा गया, के हर आयाम को अर्थ की नजर से ही देखा गया उसे भूमि पर सम्पत्ति सम्बधरी वैधनिक अधिकार तो थे, परन्तु भू–नीति के अन्तर्गत हिमालय की कृषि स्थानीय जनों को न तो खाद्य सुरक्षा प्रदान कर सकी और न ही अर्थव्यवस्था के विविधीकरण का आधार ही प्रस्तुत कर सकी।

इन परिस्थितियों में युवा अपने धर और जमीन की सुरक्षा के लिए रोजगार की खोज में प्रवास करने को विवश होगया मजदूरी के बाद बचे पैसों को धर योजना ही उसके जीवन का ध्येय था, यही मनीआर्डर अर्थव्यवस्था का प्रारम्भ है। वास्तव में हिमालय सरंचना में भूमि ही ऐसा संसाधन है जिस पर समाज की समृद्वि निर्भर करती है लेकिन महत्वपूर्ण प्रश्न उसके स्वामित्व और उपयोग के प्रतिरूप का है। हिमालय के निवासीयों की सम्पत्ति यहॉ की मनोरम छटा ही थी, उसकी आर्थिक स्थिाति इतनी नही थी कि कृषि में नवाचार करते है या स्थानीय बाजारों का विकास या रोजगार पैदा कर सकें इसके लिए सरकारी प्रयत्नों की ही आवश्यकता थी, परन्तु इस स्थिति में सरकार में सोच शून्य थी। इसी शून्यता के दृष्टिगत यहाँ के निवासियों मे पलायन का भाव बढता गया। यह पलायन केवल रोजगार के लिए नहीं था वरन् भूख, घर व जमीन को बचाने का भी संघर्ष था।

सन्दर्भ सूची

1. ई0 टी0 एटकिसन हिमालय गजेटियर ग्रथ–3 भाग 1 व 2) अनुवाद– प्रकाश थपलियाल, 1998 पृष्ठ 288–290

2. रावत अजय गढवाल का इतिहास (1358-1947) इन्डस पब्लिसिगं कम्पनी, दिल्ली पृ0–35
3. हवैली पी0 – ब्रिटिश कुमायुं– द ला आफ दि एक्स्ट्रा रेग्यूलेशन ट्रेक्टस सब आर्डिनेट टु द गवर्नमेन्ट, ना0 वे0 प्रो0,1870 पुमु0 1992, वाराणसी
4. विष्ट, सुरेन्द्र सिंह, हिमालय में उपनिवेशवाद और पर्यावरण ट्रान्समीडिया पब्लिकेशन श्रीनगर पृष्ठ 47–55
5. शिव प्रसाद डबराल, उत्तराखण्ड का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास भाग–7 (सन् 1815–1749) वीरगााथा प्रकाशन दुगड्डा, पृ0 – 87
6. पौ0 ई0 को0– गढवाल सेटलमेन्ट, 1896, इलाहाबाद पृ0 56
5. जुयाल आर0 पी0/एम0 सी0 सती,–गढवाल में ब्रिटिश शासन भू–प्रबंध की औपनिवेशक नीति एवं खाद्य सुरक्षा शिक्षा शोध पत्रिका (अंक –09) वर्ष 2006 डॉ पी0एल0 भट्ट (सम्पादक) उत्तराखण्ड शोध संस्थान कोटद्वार (गढवाल), पृष्ठ 10